बाइबल के प्रति उचित व्यवहार

मसीह की कलीसियाओं और साम्प्रदायिक कलीसियाओं के संगठनों में बहुत सी भिन्नताएं स्पष्ट हैं। इस समय हम सभी विभिन्नताओं अर्थात *बाइबल के प्रति हमारा व्यवहार* पर चर्चा न करके केवल कुछ बुनियादी भिन्नताओं पर चर्चा करेंगे जो उन सभी भिन्नताओं का कारण हैं। पवित्र शास्त्र के प्रति उचित व्यवहार की बात करते हुए, हमें तीन सिद्धांतों पर विचार करना चाहिए। जब हमें बाइबल की सम्पूर्णता, अधिकार और सामर्थ का पता चल जाएगा तब हमें परमेश्वर के इस लिखित प्रकाशन के अर्थ तथा महत्व की भी समझ आ जाएगी।

इसकी संपूर्णता

बाइबल मनुष्य के लिए प्रकट की गई परमेश्वर की सम्पूर्ण इच्छा है। परमेश्वर ने इसके द्वारा बात की, और जहां तक अतिरिक्त प्रकाशन का सम्बन्ध है तो उसने बात करनी बन्द कर दी है। बाइबल सम्पूर्ण है, पतमुस के टापू पर निर्वासन के दौरान यूहन्ना ने ''आमीन'' लिखा और अपनी कलम एक तरफ रख दी, कि मनुष्य के लिए परमेश्वर का सन्देश पूरा हो गया है।

एक समय था जब पवित्र शास्त्र की पूर्णता, जैसे कि हम इस शब्द का इस्तेमाल कर रहे हैं, की पुष्टि नहीं हो सकी थी। पुराने नियम के दिनों में, परमेश्वर अपनी इच्छा को धीरे-धीरे ''नियम पर नियम, ... थोड़ा यहां, थोड़ा वहां'' (यशायाह 28:10ख) करके बताता था।

पुराने नियम के पूरा होने पर भी परमेश्वर का प्रकाशन पूरा नहीं हुआ था। यीशु आया और अपने पिता की इच्छा को प्रकट करता रहा। उसने बहुत सी शिक्षाओं से लोगों को परिचित करवाया जो पहले नहीं दी गई थीं। ''तुम सुन चुके हो कि कहा गया था, ... परन्तु मैं तुम से यह कहता हूं'' वाक्य प्रभु के पहाड़ी उपदेश में बार-बार आया है।

पृथ्वी पर अपनी सेवकाई के अन्त में, यीशु ने कहा, ''मुझे तुम से और भी बहुत सी बातें कहनी हैं, परन्तु अभी तुम उन्हें सह नहीं सकते'' (यूहन्ना 16:12)। अभी भी, कुछ

बातें कहने को रह गई थीं। उस समय तक परमेश्वर का प्रकाशन पूरा नहीं हुआ था। फिर भी, यीशु के अगले कथन पर ध्यान दें: ''परन्तु जब वह अर्थात सत्य का आत्मा आएगा, तो तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा'' (यूहन्ना 16:13क)। यहां एक प्रतिज्ञा है कि प्रकाशन प्रेरितों के समय में पूरा होना है। आत्मा ने आकर उन्हें ''सब'' (कुछ ''भाग'' नहीं) सत्य में अगुआई देनी थी।

वास्तव में, बाद में आत्मा प्रेरितों पर आया (प्रेरितों 2:4)। क्या उसने सब सत्य में उनकी अगुआई की? यीशु ने कहा था कि वह उनकी अगुआई करेगा। क्या उसने उनकी अगुआई की? यदि यीशु ने अपना किया वायदा निभाया तो आत्मा ने उनकी अगुआई की। यही कारण है कि बाद में पतरस कह पाया कि ''उसके ईश्वरीय सामर्थ ने सब कुछ जो जीवन और भक्ति से सम्बन्ध रखता है, हमें... दिया है'' (2 पतरस 1:3)। याकूब ने ''स्वतन्त्रता की सिद्ध व्यवस्था'' (याकूब 1:25) की बात की। पौलुस ने हर उस व्यक्ति पर शाप की घोषणा की जो उस सुसमाचार को छोड़ जिसका प्रचार पौलुस ने किया था, प्रचार करने का साहस करता (गलतियों 1:8, 9)।

हां, प्रेरितों को सब सत्यों में अगुआई मिली थी। यीशु ने अपना वायदा पूरा किया। परमेश्वर का प्रकाशन पूरा हो गया था। इस तथ्य का स्थापित होना दिखाता है कि तब से प्रकाशन नहीं मिला है। यह आज के तथाकथित ''भविष्यवक्ताओं'' के दावों को झूठा ठहराता है।

इसका अधिकार

''अधिकार के लिए हम किसके पास जाएं?'' यह प्रश्न धार्मिक जगत में बड़ी देर तक चर्चा में रहा है। बहुत से उत्तर दिए जा चुके हैं, और बहुत से दावे हो चुके हैं। कई हमें चर्च जाने के लिए कहते हैं, परन्तु बाइबल कहीं पर भी यह शिक्षा नहीं देती। दूसरे कहते हैं कि हर व्यक्ति को अपने विवेक की बात माननी चाहिए। बाइबल यह शिक्षा भी नहीं देती है। इसके विपरीत, बाइबल सिखाती है कि अपनी समझ के अनुसार नहीं चलना चाहिए (यिर्मयाह 10:23; नीतिवचन 14:12)। दूसरे लोग परिषदों, कन्वेंशनों, और सिनडों में विश्वास रखते हैं। कई तो अधिकार के मापदण्ड के रूप में परम्परा से चिपके हुए हैं। परम्परा पर ही तो मसीह ने सबसे ज़ोरदार आक्रमण किया था (मरकुस 7:7-9)।

हम किसके पास जाएं? हमें उसके पास जाना चाहिए जिसके पास अधिकार है अर्थात यीशु के पास (मत्ती 28:18)। उसके पास ''सारा अधिकार'' है। इससे मूसा, दाऊद, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले, कलीसिया, परिषदों या विवेक के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। राजा यीशु को सारा अधिकार दिया गया है।

आज परमेश्वर हमारे साथ अपने पुत्र के द्वारा बात करता है (इब्रानियों 1:2)। धर्म के किसी भी मसले को हल करने के लिए, हमें यीशु के पास ही जाना चाहिए। हम किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। हमें उसकी आवाज को सुनना चाहिए और सभी धार्मिक मामलों में उसी की बात को ही अन्तिम मानना चाहिए।

राजा अपनी इच्छा को कैसे बताता है ? मसीह हमारे साथ कैसे बात करता है ? अपने राजदूतों के द्वारा (2 कुरिन्थियों 5:20)। पौलुस तथा परमेश्वर की प्रेरणा प्राप्त दूसरे लोग राजदूत, अर्थात अपने राजा के प्रतिनिधि थे। उन्होंने मसीह का वचन हमें दिया जो उसने उन्हें पवित्र आत्मा के द्वारा दिया था (मत्ती 10:20)। वे मसीह के प्रतिनिधि थे (यूहन्ना 20:20-23; मत्ती 19:28)। जैसे कि हम पहले ही देख चुके हैं, उन्हें सब सत्य में अगुआई दी गई थी। फिर, यह आश्चर्य की बात नहीं कि पवित्र शास्त्र जो उन्होंने हमें दिया, वह अपने आप में अधिकार होने का दावा करता है (2 यूहन्ना 9; गलतियों 1:6-9; 1 पतरस 4:11)। हमें ऐसे बात करनी चाहिए जैसे ''परमेश्वर का वचन'' है।

यूहन्ना ने नये नियम के सिद्धांत के अन्तिम पत्र में, इस पुस्तक में जोड़ने वालों और इसमें निकालने वालों के विरुद्ध चेतावनी देकर नये नियम के लेखकों की भावना व्यक्त कर दी (प्रकाशितवाक्य 22:18, 19)। किसी ने कहा है कि वह केवल प्रकाशितवाक्य की पुस्तक की ही बात कर रहा था। यदि यह सत्य भी है, तो भी यह भावना सम्पूर्ण पवित्र शास्त्र की है। इस व्यवहार के कारण ही हम जहां बाइबल बोलती है वहां बोलने और जहां बाइबल चुप है वहां चुप रहने का प्रयास करते हैं। पवित्र शास्त्र का उचित सम्मान करने से हम उसका सम्मान करेंगे जो शास्त्र कहता है, बल्कि उसके चुप रहने का भी सम्मान करेंगे। हम यह नहीं पूछेंगे कि, ''पवित्र शास्त्र में इसकी मनाही कहां की गई है ?'' बल्कि हम पूछेंगे, ''पवित्र शास्त्र में इसकी शिक्षा कहां दी गई है ?'' यह तथ्य अर्थात पवित्र शास्त्र के अधिकार को स्थापित करना, दिखाता है कि हमें ये बातें कहीं और से नहीं मिल सकती हैं।

इसकी सामर्थ

सम्भवत: कुछ लोगों द्वारा वचन की सम्पूर्णता और अधिकार का अहसास करने में असफलता के मुख्य कारणों में से एक यह है कि वे इसकी शक्ति को नहीं समझ पाए। कइयों ने इसे ''मृत पत्र'' कहा है। इसके विपरीत, इब्रानियों के लेखक ने इसे ''जीवित, और प्रबल, और हर एक दो धारी तलवार से भी बहुत चोखा'' कहा है (इब्रानियों 4:12)।

परमेश्वर का वचन हमेशा शक्तिशाली और उस काम को पूरा करने के योग्य रहा है जो वह करना चाहता है। उसके कहने से संसार अस्तित्व में आया। वह सामर्थ के अपने वचन से सभी वस्तुओं को बनाए रखता है (इब्रानियों 1:3)। मसीह बोला और मुर्दे जी उठे; उसने बोलकर ही तूफ़ान को शांत कर दिया।

हम मनुष्यों के मौखिक कथनों की अपेक्षा उनके लिखित दस्तावेजों को अधिक शक्तिशाली मानते हैं; परन्तु परमेश्वर का लिखित वचन निश्चय ही उसके मौखिक वचन से किसी भी प्रकार कम नहीं है। उसका लिखित वचन संसार की रचना नहीं करता, और यह मुर्दों को नहीं जिलाता; परन्तु यह ऐसे ही उद्देश्यों के लिए लिखा गया था। यह आत्माओं को बचाने के लिए दिया गया था (रोमियों 1:16; 1 कुरिन्थियों 15:1, 2; याकूब 1:21)। यदि मुर्दों को जिलाने के उद्देश्य से बोला गया वचन मुर्दों को जिला सकता था, तो जो वचन उसने आत्माओं को बचाने के लिए दिया, वह आत्माओं को भी बचा सकता है।

परमेश्वर का वचन रोशनी तथा ज्ञान देता है (भजन संहिता 119:130)। यह जन्म देता है (याकूब 1:18), जीवन देता है (भजन 119:50), और शुद्ध करता है (यूहन्ना 15:3; 1 पतरस 1:22)। यह उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ है (रोमियों 1:16)। हां, वचन लोगों को बदल सकता है। यह लोगों को मसीही बनाने के लिए परमेश्वर की शक्ति है। मसीही बनने के बाद, हमें भोजन की आवश्यकता होती है; और परमेश्वर का वचन ही वह भोजन है (1 पतरस 2:1, 2)। वास्तव में, वचन परमेश्वर के जन को सिद्ध और हर एक भले काम के लिए तैयार कर सकता है (2 तीमुथियुस 3:16, 17)।

सारांश

लोग सदा ही परमेश्वर के वचन से असंतुष्ट ही रहे हैं। वे हमेशा कुछ और की इच्छा करते हैं। अधोलोक में पड़ा आदमी चाहता था कि मुर्दों में से कोई उसके भाइयों के पास जाए (लूका 16)। इब्राहीम ने उत्तर दिया, ''उनके पास तो मूसा और भविष्यवक्ताओं की पुस्तकें हैं, वे उनकी सुनें'' (लूका 16:29)। आज, मूसा और भविष्यवक्ताओं के साथ, हमारे पास मसीह और उसके प्रेरितों की बातें हैं। हमें उनके संदेश से संतुष्ट होना चाहिए। बाइबल सम्पूर्ण है, इसलिए हमें चाहिए कि आधुनिक ''प्रकाशन'' को नकार दें। बाइबल ही हमारा अधिकार है; इसलिए, हमें मनुष्यों की शिक्षाओं तथा आज्ञाओं को नकारना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर का वचन शक्तिशाली है, इसलिए हमें ''मन को अच्छा लगने वाली'' परिवर्तन की चमत्कारी बातों की ओर नहीं देखना चाहिए। बल्कि हमें परिवर्तन के लिए नये नियम के नमूने को पकड़े रखना चाहिए।

आकाश और पृथ्वी के साथ, मनुष्यों के विचार तथा शिक्षाएं भी जाती रहेंगी; परन्तु परमेश्वर का वचन नहीं (2 पतरस 3:10; मत्ती 24:35)। आज के इस परिवर्तनशील युग में, यह जानना कितना सुखद है कि हम उस पर लंगर डाल सकते हैं जो सदा तक कायम रहेगा जबकि सभी वस्तुएं आग के बड़े ताप से पिघल जाएंगी!